Dr. Ashish Kumar Kundu
Deptt. Of Philosophy
K.L.S. College,
Nawada
B.A.I

“Correspondence Theory Of Truth”

15/7/20 Topic - Correspondence Theory of Truth. 1.

दर्शनशास्त्र में किसी भी ज्ञान की सत्यता की कसौटी निर्धारित होती है। ज्ञान को सत्य कहने का अर्थ क्या है? सत्य होने की शर्तें क्या हैं इत्यादि प्रश्न उठाये जाते हैं। मुख्यतः सत्यता हमारी उक्तियों या प्रतिज्ञप्तियों का स्वाभाविक लक्षण है। फलतः सत्य से मतलब है उक्तियों की सत्यता। सत्यता उक्तियों का विधेय होती है। विश्वास को भी सत्य माना जाता है मगर विश्वास भी उक्तियों द्वारा व्यक्त होती है। उक्तियाँ भी दो प्रकार की हैं (i) प्रागनुभविक एवं (ii) अनुभव सापेक्ष। प्रागनुभविक उक्तियों की सत्यता अर्थ निर्णायक तत्वों के संबंध के द्वारा ही निर्धारित होती है, अतः यह सरल है अनुभव सापेक्ष उक्तियों की सत्यता की समस्या जटिल है क्योंकि इसे अनुभव जगत के संबंधों से निर्धारित करना है जो काफी जटिल है। सत्यता संबंधी जितने भी सिद्धान्त हैं, वे सभी अनुभव सापेक्ष उक्तियों की सत्यता का ही विवेचन करते हैं। ये सिद्धान्त मुख्यतः तीन हैं। यहाँ हम सत्यता का संवादिता सिद्धान्त की (Correspondence Theory of Truth) विवेचना करेंगे।

<u>सिद्धान्त की मुख्य विशेषताएँ</u> — 1. सत्यता उक्तियों या प्रतिज्ञप्तियों का विधेय होता है। संवादिता के अनुसार किसी भी प्रतिज्ञप्ति की सत्यता विश्व के किसी तथ्य के साथ उसकी संवादिता, यानी अनुकूलता यानी अनुरूपता में निहित है। ज्ञान तथा तथ्य के बीच संवाद या मेल सत्यता की केवल परिभाषा ही नहीं है बल्कि यह संवादिता उसकी सत्यता की कसौटी है।

2. यहाँ पर तथ्य की अवधारणा अत्यंत महत्वपूर्ण है। तथ्य कोई पदार्थ या वस्तु नहीं होता। तथ्य को हमेशा किसी वाक्य के माध्यम से व्यक्त करना होगा। अतः किसी कथन को तभी सत्य माना जायेगा जबकि इसकी आवश्यक एवं पर्याप्त शर्त एक वास्तविकता हो, तथ्य हो, अगर यह अनुरूपता नहीं हो तो कथन असत्य होगा।

3. सभी वाक्यों से तथ्य प्रकाशित नहीं होते। केवल सूचनात्मक वाक्य या वर्णनात्मक वाक्य ही तथ्य को अभिव्यक्त करते हैं। महत्वपूर्ण बात यह है कि प्रतिज्ञप्ति एवं तथ्य के संघटकों में घनिष्ठ संबंध होता है। इसी कारण संवादितावाद के विचारकों ने कहा कि कोई प्रतिज्ञप्ति सत्य होगी, जिसके अनुरूप उसके व्यंजक वाक्य द्वारा बोधित तथ्य वस्तुतः तथ्य हो यानी वास्तविकता का अंग हो।

4. तथ्य भी दो प्रकार के होते हैं। भौतिक तथा मानसिक। मानसिक तथ्यों को ज्ञापित करने वाली प्रतिज्ञप्तियाँ तभी सत्य होंगी, जबकि

उनके द्वारा सूचित तथ्य मानसिक जगत के यथार्थ अंग हों।

5. अरस्तू ने भी सत्यता एवं असत्यता की परिभाषा एवं कसौटी के बारे में इसी प्रकार का सिद्धान्त दिया था जो कि संवादिता का मूल सिद्धान्त है।

6. यह स्पष्ट है कि असत्य एवं निषेधात्मक प्रतिज्ञप्तियों के लिए संवादी तथ्यों को स्वीकार करने की आवश्यकता नहीं है।

7. साधारण विचार में प्रत्यय एवं तथ्यों के बीच संवादिता को सत्य कहते हैं एवं असंवादिता को असत्य, परन्तु सही रूप से देखने पर उचित विचार यह है कि संवादिता प्रतिज्ञप्तियों एवं तथ्यों के बीच का संबंध है। प्रत्यय सत्य एवं असत्य कहने में नहीं हो सकते।

16/3/20.

प्रमुख विचारक -

पाश्चात्य विचार - पाश्चात्य दर्शन में करीब-करीब सभी अनुभववादी दार्शनिक संवादिता के सिद्धान्त के समर्थक हैं। प्लेटो एवं अरस्तू बुद्धिवादी विचारक होते हुए भी संवादिता को मानते हैं।

अनुभववादियों के अनुसार प्राथमिक प्रतिज्ञप्तियाँ जो ज्ञान के मूल में हैं, अनुभव जन्य होती हैं यानी इंद्रिय संवेदनों या मानसिक अनुभवों को व्यक्त करती हैं। अतः ये प्रतिज्ञप्तियाँ तभी सत्य होंगी जबकि भौतिक या मानसिक जगत में उनके संवादी तथ्य वास्तव में हों। लॉक का विचार यही है।

प्लेटो भी संवादितावाद के समर्थक हैं। उनके अनुसार विकसित ज्ञान का आधार वास्तविकता का ज्ञान है। अतः ज्ञान तभी सत्य होगा जब वह वास्तविकता के अनुकूल हो।

अरस्तू भी प्रतिज्ञप्तियों की सत्यता उनसे सूचित तथ्यों से सामंजस्य के आधार पर ही मानते हैं।

समकालीन दार्शनिकों में मूर एवं रसेल संवादिता के मुख्य दार्शनिक हैं। मूर के अनुसार सत्यता प्रतिज्ञप्तियों का विशेषण है जो तभी प्रतिज्ञप्ति में पाया जाता है जबकि उसके संवादी तथ्य वास्तविक हों। अतः सत्य प्रतिज्ञप्ति एवं उससे सूचित तथ्य में संवादिता होती है लेकिन इस संवादिता के संबंध में विश्लेषण नहीं किया जा सकता, उसकी परिभाषा नहीं दी जा सकती क्योंकि ऐसा सरल तथा अनुपम होता है। मूर तथ्यों एवं वस्तुओं को एक तरह का मानते हैं, जो सही नहीं लगता।

रसेल ने तथ्यों एवं वस्तुओं में भेद किया है

सत्य विश्वासों एवं तथ्यों के बीच की संवादिता है, न कि विश्वासों एवं मूल्यों के बीच का। यहाँ विश्वास का अर्थ मानसिक क्रिया से नहीं बल्कि विश्वास या निर्णय वाली प्रतिज्ञप्तियों से ही है। रसेल के अनुसार संवादित विश्वासों के निर्माणक तत्वों एवं तथ्यों के निर्माणक तत्वों के संबंधों के बीच का सादृश्य या समानान्तरता है।

भारतीय विचार – यहाँ पाश्चात्य मत से भिन्न रूप से सत्यता का प्रामाण्य की चर्चा हुई है। इनके सामने मूल के संबंध में मुख्य प्रश्न यह है कि ज्ञान का प्रामाण्य स्वतः उत्पन्न सिद्ध होता है या परतः अर्थात् ज्ञान को प्रामाणिक बनाने वाले तत्त्व ज्ञान में ही निहित होते या बाह्य कारणों से प्राप्त होते हैं?

इनमें न्याय दर्शन की संवादिता का सिद्धान्त विख्यात है। इनके अनुसार कोई भी ज्ञान स्वतः सत्य या असत्य नहीं होता। सत्यता एवं असत्यता बाह्य कारणों से प्राप्त होती है। वास्तविकता से संवादी या असंवादी होने से वह क्रमशः सत्य या असत्य होता है एवं इसका ज्ञान भी परतः होता है यानी अनुमान से प्राप्त होता है। जिसका आधार प्रवृत्ति-सामर्थ्य यानी सफल व्यवहार।

संवादिता का ज्ञान अनुमान के अलावे एक अन्य ढंग से किया जा सकता है। किसी अन्य पुनरावर्तित ज्ञान की सामंजस्य के आधार पर भी संवादिता का ज्ञान हो सकता है।

17/7/20

मूल्यांकन – यह सिद्धान्त साधारण व्यक्तियों में अधिक लोकप्रिय है, क्योंकि साधारण व्यक्ति वस्तुवादी होता है तथा उसी ज्ञान को सत्य मानता है जो तथ्यों के अनुकूल हो। जो तथ्यों के अनुकूल नहीं हो वह असत्य है। प्रत्ययवादियों ने संवादिता सिद्धान्त की आलोचना की है।

1. संवादिता में दो निर्मायक तत्त्व हैं – संवादिता एवं तथ्य। संवादिता प्रतिज्ञप्ति एवं तथ्य के बीच का संबंध है, यह समझ में नहीं आता। क्योंकि प्रतिज्ञप्ति देश एवं काल में पाया जाने वाला कोई भौतिक पदार्थ नहीं। यह आत्मिक का भी संबंध नहीं क्योंकि वह संबंध भी भौतिक है, तो फिर संवादिता किस प्रकार का संबंध है? इसका स्पष्ट एवं संतोषजनक उत्तर नहीं मिलता।
2. संभवतः ही तथ्य, यह भी दुर्बोध ही है। विचारकों ने कहा तथ्य घटना, पदार्थ, क्रिया या संबंध नहीं है, तो वह क्या है?

इसको समझाना भी सरल नहीं।

3. फिर प्रश्न उठता है संवादिता के ज्ञान के संबंध में। यह भी काफी उलझा हुआ है, प्रश्न है हम कैसे जानेंगे कि किसी प्रतिज्ञप्ति एवं तथ्य में संवादिता है या नहीं? मूर के अनुसार इसका ज्ञान अन्तःप्रज्ञा के द्वारा होता है। परन्तु इसमें अन्तःप्रज्ञावाद का दोष आ जाएगा यानी संवादिता व्यक्तिनिष्ठ हो जाएगी, एक के अनुसार संवाद दीखेगा, दूसरे के अनुसार नहीं भी दीख सकता है।

4. प्रत्ययवादियों ने संवादिता सिद्धान्त की आलोचना करते हुए कहा है कि नवीन यथार्थवाद में ज्ञात वस्तु एवं ज्ञेय एक ही है। ऐसी स्थिति में इनमें समरूपता ढूंढने का कोई अर्थ नहीं है, क्योंकि इसमें हमेशा समरूपता होगी और यह हमेशा सत्य ज्ञान ही होगा। लेकिन हमें असत्य ज्ञान भी प्राप्त होता है, वह कैसे होता है? इसकी व्याख्या नहीं मिलती है।

5. संवादिता सिद्धान्त में अनावस्था दोष भी आ जाता है। प्रतिज्ञप्ति से बोधित तथ्य की सत्यता को जानने के लिए हमें यह जानना पड़ेगा कि उसमें संवादिता कैसे है? इस प्रकार हम चलते जाएंगे और अनवस्था दोष उत्पन्न होगा।

6. रसेल का संवादिता सिद्धान्त भी दोष रहित नहीं है। यह शुद्ध संवादिता नहीं है बल्कि सामंजस्यवाद एवं व्यवहारवाद का भी अंश इसमें है। क्योंकि संवादिता को रसेल सामंजस्य या व्यावहारिक सामर्थ्य या सफलता से अनुमति मानता है। यह सही है कि रसेल इस प्रश्न का उत्तर देता है जबकि अन्य नहीं दे पाते हैं। हालांकि रसेल का उत्तर भी इस संबंध में पूर्णतः निर्दोष नहीं है।

निष्कर्ष — उपर की विवेचना के आधार पर हम इस निष्कर्ष पर आते हैं कि संवादिता का सिद्धान्त सत्य संबंधी प्रश्नों के समाधान देने में पूर्णतः सक्षम नहीं। तथापि व्यवहारिक बुद्धि वालों पर संतोषजनक भी है मगर पूर्णतः सही नहीं है। अकेले समाज कैसे हम सत्यता का सिद्धान्त मानने में हिचकते हैं।

आनुभविक प्रतिज्ञप्तियों के लिए संवादिता सिद्धान्त सत्यता का आधार हो सकता है, परन्तु सारी प्रतिज्ञप्तियों की सत्यता का आधार मान लेने पर ही दोष उत्पन्न होता है। साधारण व्यक्ति के लिए यह सिद्धान्त आकर्षक एवं सरल है।

— X —